International Journal of Multidisciplinary Education and Research
ISSN: 2455-4588; Impact Factor: RJIF 5.12
Received: 23-06-2019; Accepted: 27-07-2019
www.educationjournal.in
Volume 4; Issue 5; September 2019; Page No. 91-92

जैन दर्शन में बंधन और मोक्ष का सिद्धांत

डॉ. मुकेश कुमार
सहायक प्रोफेसर, एल.एन.टी. शिक्षण महाविद्यालय पानीपत, हरियाणा, भारत

सारांश
बंधन का अर्थ साधारणतः भारतीय विचारकों ने जन्म–मरण के चक्कर में फँसना बताया है। जैन दर्शन भी बंधन को इसी अर्थ में गहण करता है। इस दर्शन के अनुसार जीव अपने मौलिक रूप में 'अनंतचतुष्टय' (अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत शक्ति एवं अनंत आनंद) के गुणों से युक्त रहता है। जब जीव शरीर धारण करता है, तब वह बंधनग्रस्त हो जाता है और उसके मौलिक गुण छिप जाते हैं। इस प्रकार, शरीर ही जीवों के बंधन का कारण माना गया है। जैन दर्शन में बंधन के दो प्रकार बताए गए हैं – भावबंधन और द्रव्यबंधन। मन में दूषित विचारों को भरने से 'भावबंधन' होता है और जीव के पुद्गलों से वास्तव में संबद्ध होने से 'द्रव्यबंधन' होता है। जीव का पुद्गलों से छुटकारा पाना ही 'मोक्ष' है। जैन दर्शन के अनुसार सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चरित्र ही मोक्ष प्राप्ति के साधन हैं – सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।

मूल शब्दः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि, मोक्ष, ज्ञान

1ण् प्दजतवकनबजपवद
सामान्यतः भारतीय दर्शन को मोक्ष शास्त्र कहा जाता है। कुछ दार्शनिक सम्प्रदायों को छोड़कर सभी भारतीय दार्शनिक संप्रदाय समान रूप से अपने मोक्ष, मुक्ति अथवा कैवल्य विषयक विचारों का प्रतिपादन करते हैं। मोक्ष को एक साध्य के रूप में, जीवन के अन्तिम लक्ष्य के रूप में तो सभी ने स्वीकार किया, भले ही इसके स्वरूप के विषय में और इसकी प्राप्ति के साधन के विषय में दार्शनिक संप्रदायों में मतभेद रहा हो।
मोक्ष के स्वरूप और इसकी प्राप्ति के साधन के विषय में जैन दर्शन में बड़े ही मौलिक तथा मार्मिक विचार मिलते हैं। जैन दर्शन की मोक्ष संबंधी अवधारणा को समझने के लिए जैन दर्शन के बंधन संबंधी विचारों को समझना समीचीन होगा।
जैन दर्शन की मान्यता है कि कर्म भौतिक और पौद्गलिक है। कर्म–पुद्गलों का जीव को जकड़ लेना बन्धन है और जीव का कर्म–पुद्गलों से सर्वथा छूट जाना मोक्ष है। जैन दर्शन की ऐसी धारणा है कि जीव अपने मौलिक रूप में 'अनंतचतुष्टय' (अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत शक्ति एवं अनंत आनंद) से युक्त है, परन्तु बंधन की अवस्था में इसकी ये पूर्णताएँ (क्षमताएँ) सीमित हो जाती हैं। जीव की पूर्णताओं का सीमित हो जाना ही बंधन का कारण है। इस बंधन का मुख्य कारण कर्म है। जैनों ने कर्म के अनेक प्रकार माने हैं। यथा –

1. **आयुकर्मः** जिससे आयु निर्धारित होती है। ये चार प्रकार के हैं –;पद्ध **नरकायुकर्मः** जिससे नरक प्राप्त होता है।
   (ii) तिर्यंकायुकर्मः जिससे जीव को पशु–पक्षी योनि में जन्म लेना पड़ता है।
   (iii) मनुष्यायुकर्मः जिससे जीव मनुष्य योनि में जन्म लेता है।
   iv) देवायुकर्मः जिससे जीव देवकुल में उत्पन्न होता है।
2. **नामकर्मः** कौन–सा शरीर, उसके कौन–से सामान्य और विशेष गुण तथा शक्तियाँ होंगी इनका निर्धारण नामकर्म द्वारा होता है।
3. **गोत्रकर्मः** जिससे व्यक्ति का गोत्र या कुल निर्धारित होता है। गोत्र कर्म के भी दो प्रकार हैं –
   उच्च गोत्रकर्मः जिसके द्वारा व्यक्ति उच्च गोत्र में जन्म लेता है।
   निम्न गोत्रकर्मः जिसके द्वारा व्यक्ति नीच कुल या गोत्र में जन्म लेता है।
4. **ज्ञानावरणकर्मः** वह कर्म जो ज्ञान का आवरण (नाश) करते हैं।
5. **दर्शनावरणकर्मः** वे कर्म जो श्रद्धा का नाश करते हैं।
6. **मोहनीयकर्मः** वे कर्म जो मोह उत्पन्न करते हैं।
7. **वेदनीयकर्मः** वे कर्म जो सुख–दुःख आदि की वेदना उत्पन्न करते हैं।
8. **अन्तरायकर्मः** वे कर्म जो आत्मा की स्वाभाविक शक्ति को रोकते हैं।

जैन दर्शन के अनुसार ये कर्म ही भोग्य (जगत) और भोगायतन (शरीर) के साथ जीव का संबंध कराने के कारण हैं। जीव स्वभावतः मुक्त है किन्तु अनादि अविद्या या वासना के कारण वह कर्म बंधन में फँस जाता है। पूर्वजन्मों के कर्मों के कारण जीव में वासनायें (क्रोध, मान, लोभ या माया जिन्हें कषाय कहा जाता है) पैदा होती हैं। ये वासनायें तृप्त होना चाहती हैं, जिसके परिणामस्वरूप ये पुद्गल (वह भौतिक द्रव्य जिसे हम साधारणतः भूत (Matter) कहते हैं उसे ही जैन दर्शन में पुद्गल कहा जाता है) को अपनी ओर आकृष्ट करती हैं, जिससे शरीर का निर्माण होता है। अतः हम कह सकते हैं कि जीव शरीर का निमित्त कारण है और पुद्गल उपादान कारण। चूंकि जीव अपने कर्मों के अनुसार ही पुद्गल–कणों को आकृष्ट करता है, इसलिए आकृष्ट पुद्गल–कणों को कर्म–पुद्गल की संज्ञा दी गई है। उस अवस्था को जब कर्म–पुद्गल आत्मा की ओर प्रवाहित होते हैं 'आस्रव' कहा जाता है। आस्रव के कारण जीव का वास्तविक स्वरूप नष्ट हो जाता है। जैनों के अनुसार यही जीव का बंधन कहलाता है। बंधन के दो भेद हैं – ;पद्ध भावबंधन, ;पपद्ध द्रव्यबंधन। मन में दूषित भावों का अस्तित्व भावबंधन कहलाता है और जीव का पुद्गल से बंध जाना द्रव्यबंधन कहलाता है। जैनों का विश्वास है कि भावबंधन ही द्रव्यबंधन का कारण है।
अब मोक्ष के विषय में जैन दर्शन की क्या मान्यता है, इस पर विचार करते हैं। जैन दर्शन भी अन्य भारतीय दर्शनों की भाँति मोक्ष को जीवन का चरम लक्ष्य स्वीकार करता है। जैन तत्त्वमीमांसा के अनुसार मोक्ष बंधन का प्रतिलोम है। जीव और

पुद्गल का संयोग बंधन है और जीव का पुद्गल से वियोग मोक्ष है। अतः मोक्ष की प्राप्ति ही मानव जीवन का एकमात्र लक्ष्य है।
जैन दार्शनिकों के अनुसार मोक्ष प्राप्ति की एक निश्चित प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के दो अंग हैं, जिन्हें क्रमशः 'संवर' तथा 'निर्जरा' कहा जाता है। पुद्गल–कणों का जीव की ओर होने वाले प्रवाह को रोकना 'संवर' है तथा कर्म–पुद्गल का आत्मा से निष्कासन या बहिर्गमन 'निर्जरा' कहा गया है।
इस प्रकार 'संवर' तथा 'निर्जरा' अर्थात् कर्म–पुद्गल कणों का जीव की ओर प्रवाह रोककर तथा जीव में समाविष्ट पुद्गल को अलग करके जीव कैवल्य अवस्था या मोक्ष प्राप्त कर सकता है।
मोक्ष प्राप्ति कैसे होगी इसके लिए जैन दर्शनिक कहते हैं कि सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चरित्र जिन्हें त्रिरत्न कहा जाता है के द्वारा ही मोक्ष की प्राप्ति संभव होती है। इस प्रकार जैन दर्शन सैद्धान्तिक ही नहीं अपितु व्यावहारिक भी है। उमा स्वामी के निम्न कथन इसका प्रमाण हैं –

सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः । – तत्त्वार्थ सूत्र, 1/1

अर्थात् सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र मोक्ष के मार्ग हैं। भारत के अधिकांश दर्शनों में मोक्ष के लिए इन तीन मार्गों में से किसी एक को आवश्यक माना गया है। जैन दर्शन की यह खूबी रही है कि उसने तीनों एकांगी मार्गों का समन्वय किया है। इस दृष्टिकोण से जैनों का मोक्ष–मार्ग अद्वितीय कहा जा सकता है। अब इन पर अलग–अलग विचार करना अपेक्षित होगा।

1ण **म्यक् दर्शनः** यहाँ सम्यक् दर्शन का तात्पर्य है जैन सिद्धान्तों, तीर्थकरों के उपदेशों और शिक्षाओं में आंतरिक विश्वास या श्रद्धा रखना। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि यहाँ अंधविश्वास को आश्रय दिया गया है, बल्कि इसका अभिप्राय यह है कि केवल युक्तिसंगत बातों में ही श्रद्धा या विश्वास रखा जाय। मनुष्य को यह विश्वास रखना चाहिए कि जैन सिद्धान्तों तथा तीर्थकरों के बताए मार्ग सत्य हैं, उनके मार्ग का अनुसरण करके निश्चित ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है।

2ण **सम्यक् ज्ञानः** मोक्ष प्राप्ति में विश्वास के साथ–साथ ज्ञान भी आवश्यक माना गया है। जीव और अजीव का अन्तर समझना एवं वास्तविकता की पहचान करना ही सम्यक् ज्ञान है। भारतीय दर्शनों की भाँति जैन दर्शन भी यह मानता है कि अज्ञान ही बंधन का मूल कारण है। इसलिए मोक्ष की प्राप्ति में ज्ञान का महत्त्वपूर्ण योगदान है। जैनों के अनुसार ज्ञान के निम्नलिखित पाँच भेद हैं। यथा – मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्याय और केवलज्ञान।

(i) मतिज्ञानः जो ज्ञान मन और इंद्रिय द्वारा प्राप्त हो, उसे मतिज्ञान कहते हैं।

(ii) श्रुतज्ञानः सुने हुए वचन एवं प्रामाणिक ग्रंथों से प्राप्त ज्ञान ही श्रुतज्ञान है।

(iii) अवधिज्ञानः बाधाओं के हट जाने से अत्यंत दूरस्थ, सूक्ष्म तथा स्पष्ट वस्तुओं का ज्ञान ही अवधिज्ञान है।

(iv) मनःपर्यायज्ञानः राग–द्वेष पर विजय पाने के बाद व्यक्ति दूसरों के भूत और वर्तमान विचारों को जान लेता है, यही मनःपर्यायज्ञान है।

(v) केवलज्ञानः यह ज्ञान पूर्णज्ञान है, जो केवल मुक्त जीवों को ही प्राप्त होता है। इस ज्ञान के द्वारा भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों की वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त होता है। यह केवलज्ञान पूर्णतया निर्दोष है। इसके द्वारा विश्वमात्र के समस्त रूपी–अरूपी द्रव्यों और उनके त्रिकालवर्ती पर्यायों का ज्ञान युगपत होता है। इस प्रकार ज्ञान भी मोक्ष प्राप्ति के लिए महत्त्वपूर्ण साधन है।

3) **सम्यक् चरित्रः** विश्वास और ज्ञान सैद्धांतिक हैं। केवल सिद्धान्त से काम नहीं चलता। इसके साथ–साथ व्यवहार को भी अपनाना पड़ता है। इसीलिए जैन दर्शन में विश्वास और ज्ञान के साथ–साथ चरित्र की शुद्धि पर भी जोर दिया है। उच्च एवं पवित्र आचरण ही व्यक्ति के लिए मोक्ष प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। अशुद्ध एवं अपवित्र आचरण व्यक्ति को पतन के मार्ग पर धकेल देता है। इसलिए चरित्र की शुद्धि एवं पवित्रता को मोक्ष प्राप्ति का महत्त्वपूर्ण साधन बताया गया है।
सम्यक् चरित्र के लिए जैन दर्शन में 'पंचव्रत' का पालन आवश्यक है। जो कि इस प्रकार हैं – अहिंसा (मन, वचन और कर्म से किसी को हानि न पहुँचाना), जैन दर्शन में अहिंसा का स्वरूप अत्यंत व्यापक है। सत्य (मन, वचन और कर्म में सत्यपरता), अस्तेय (किसी की सम्पत्ति का हरण नहीं करना), ब्रह्मचर्य (मन, वचन और कर्म से नैष्ठिक जीवन व्यतीत करना) और अपरिग्रह (मन, वचन और कर्म से भोग–विलास का त्याग और भोग्य पदार्थों के संग्रह का त्याग)। जैन धर्म में मुनियों के लिए इन व्रतों का अत्यंत कठोरता से पालन करने का विधान है। अतः उनके लिए ये महाव्रत कहे जाते हैं। गृहस्थों के लिए परिस्थिति के अनुकूल इनको उदार बनाकर इन्हें 'अणुव्रत' की संज्ञा दी गयी है। गृहस्थों के लिए ब्रह्मचर्य को धर्मानुकूल काम सेवन में तथा अपरिग्रह को संतोष में सीमित कर दिया है। योगदर्शन में इन्हें यम के अन्तर्गत रखा गया है। पंचमहाव्रत का पालन बौद्ध धर्म में भी हुआ है वहाँ इन्हें पंचशील कहा गया है। इन महाव्रतों में परस्पर घनिष्ठ संबंध है। इनमें किसी भी व्रत की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इन पंचमहाव्रतों को जैन दर्शन में मोक्ष प्राप्ति के लिए आवश्यक शर्त के रूप में स्वीकार किया गया है।
उपरोक्त साधनों का निष्ठापूर्वक पालन करके मानव मोक्षानुभूति के योग्य हो जाता है। कर्मों का आस्रव जीव में बंद हो जाता है तथा पुराने कर्मों का क्षय हो जाता है। इस प्रकार जीव अपनी स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त करता है। यही बंधनक्षय अथवा मोक्ष है।
जैन दर्शन मोक्षके भावात्मक एवं निषेधात्मक दोनों पहलुओं में विश्वास रखता है। निषेधात्मक रूप से मोक्ष दुःख रहित अवस्था है और भावात्मक रूप में यह अनंतचतुष्ट्य की प्राप्ति की अवस्था है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विचारों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जैन दर्शन में कर्म को भौतिक तथा पौद्गलिक मानना और फिर उनका आस्रव, संवर और निर्जरा दिखाकर मोक्ष प्राप्ति के मार्ग के रूप में त्रिरत्न का समन्वय स्थापित करना तथा जीव को अनंतचतुष्ट्य की पुनः प्राप्ति कराकर कैवल्य लाभ कराना जैन दर्शन का वैशिष्ट्य कहा जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. सिंह, डॉ. दीनानाथ, अद्वैत और विशिष्टाद्वैत वेदान्त, पृ. 195.
2. शर्मा, डॉ. आर.पी., भारतीय दर्शन, पृ. 74–77.
3. शर्मा, डॉ. सी.डी., भारतीय दर्शन, पृ. 41.
4. विनायक, डॉ. जे.एस., भारतीय दर्शन, पृ. 74.
5. प्रो. सिन्हा, एच.पी., भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ. 157